वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 319
ISBN 978-93-80353-39-5

गतियों से आने-जाने के द्वार

(ध्यान साधना एवं सिद्धशिला आदि)

– लेखिका –
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

सोलहवें तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ के
जन्मकल्याणक, दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 292943
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

प्रथम संस्करण	वीर निर्वाण संवत् 2536	मूल्य
1100 प्रतियाँ	ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी	20/-रु.
	11 जून 2010	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर, भगवान ऋषभदेव दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर, भगवान पुष्पदंतनाथ जन्मभूमि काकंदी, 99 करोड़ मुनियों की निर्वाणभूमि मांगीतुंगी, शाश्वत तीर्थ अयोध्या आदि अनेकों तीर्थों की उद्धारिका पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के हृदय में देव-शास्त्र-गुरु के प्रति असीम श्रद्धा-भक्ति समाविष्ट है। तीर्थंकर भगवन्तों की जन्मभूमियों का विकास, 250 ग्रंथों का सृजन एवं गुरु परम्परा के प्रति कट्टरता इसका जीता-जागता उदाहरण है।

वर्तमान समय में पूज्य माताजी प्रथम महिला साध्वी हैं जिन्होंने लेखन कार्य प्रारंभ किया तथा भगवान के सहस्रनाम मंत्रों की रचना से शुभारंभ किया गया वह लेखन कार्य आज भी अनवरत जारी है।

साहित्य सृजन की उसी अविराम शृँखला में यह ''गतियों से आने-जाने के द्वार'' नामक लघु पुस्तिका आपके हाथ में है। लघुकाय होते हुए भी इसमें तीन लोक की यात्रा का रोमांचक वर्णन है अर्थात् किस गति से जीव मरकर किस गति में जा सकता है और किस गति में नहीं जा सकता है, इस विषय का सुन्दरता से वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। एक मनुष्यगति ही ऐसी है कि जिससे जाने के लिए सभी द्वार खुले हैं अर्थात् मनुष्य खराब से खराब कार्य करके नरक में भी जा सकता है तथा अच्छे से अच्छे कार्य करके स्वर्ग-मोक्ष तक को भी प्राप्त कर सकता है, यह बात इस पुस्तक में बताई गई है।

प्रवचनकार के लिए निर्देश, तीन लोक का ध्यान, समवसरण का ध्यान, सिद्धशिला कहाँ स्थित है, उससे कितनी ऊँचाई पर जाकर सिद्ध भगवान विराजमान होते हैं आदि अन्य विषय भी इस पुस्तक में समाहित हैं जो कि सभी के लिए पठनीय हैं अतः पुस्तक के सभी विषयों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके अपनी आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाएँ, यही इसकी सार्थकता है।

प्रस्तावना

ज्ञानपिपासु भव्यात्माओं! प्रस्तुत पुस्तक में जैनधर्म के कर्मसिद्धान्तानुसार चारों गतियों में आने-जाने के द्वार का अति संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित वर्णन बहुत ही सुन्दर रूप में दिया गया है। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, षट्खण्डागम (पुस्तक 6 की गत्यागति नामक नवमीं चूलिका के आधार से) एवं चौबीस दण्डक (पं. दौलतराम द्वारा रचित) के आधार से यह सारा प्रकरण इसमें समाविष्ट किया है।

इसे ध्यान से दो-तीन बार पढ़ने से सारा विषय स्पष्ट हो जाता है तथा मन यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि हमने अनादिकाल से इन 24 दण्डकों के माध्यम से चारों गतियों में अनेकों बार भ्रमण किया है, केवल 25वें दण्डकरूप मोक्षगति को अब तक प्राप्त नहीं किया है अतः अब उसकी प्राप्ति हेतु उपाय करना है। इस पंचमकाल में किया गया किंचित् प्रयत्न भी आगामी मनुष्य भव में सार्थक हो सकता है इसलिए पुस्तक का पठन-पाठन अति आवश्यक है।

पुस्तक में दूसरा विषय पूज्य माताजी ने दिया है–''प्रवचनकार के लिए आवश्यक निर्देश''। इस आलेख में कुशल प्रवचनकर्ताओं के लिए 21 विशेष गुणों का वर्णन है, जिन्हें पढ़कर आगमनिष्ठ विद्वान् के रूप में अपनी पहचान बनाई जा सकती है।

इसी प्रकार से इसमें तीन लोक एवं समवसरण के ध्यान का संक्षिप्त प्रकरण है पुनः ''सिद्ध लोक एवं सिद्धशिला'' का संक्षिप्त वर्णन एवं तीन लोक वंदना प्रकाशित है। इन सभी आगमसम्मत विषयों का सूक्ष्म अध्ययन करके विद्वज्जन समस्त जनता को भी इन विषयों से परिचित करावें, यही इस लघु कृति के प्रकाशन का सार है।

पूज्य माताजी हम जिज्ञासुओं को सदैव आगम के प्राचीन तथ्यों को नये रूप में प्रदान करके हमारा ज्ञानवर्धन करती हैं इसके लिए हम उनका परम उपकार मानते हैं उनके पावन चरणों में शत-शत नमन।

12-5-2010 **आर्यिका चन्दनामती**

पुस्तक की रचयित्री, राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991(सन् 1934)

गृहस्थ का नाम–कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में।

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा–भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ(निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसीमंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीनलोक रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन कियेजाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॅट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	श्री शांतिनाथ स्तुति	1
2.	गतियों से आने-जाने के द्वार	2
	(i) नरकगति से आने-जाने के द्वार	2
	(ii) तिर्यग्गति से आने-जाने के द्वार	4
	(iii) तिर्यंचों की आयु	5
	(iv) मनुष्यगति से आने-जाने के द्वार	6
	(v) देवगति से आने-जाने के द्वार	10
3.	प्रवचनकार के लिए आवश्यक निर्देश	12
	(i) प्रवचनकर्ता	12
	(ii) प्रवचन का विषय	14
	(iii) प्रवचन	15
	(iv) प्रवचन का फल	15
4.	तीनलोक का ध्यान	17
5.	समवसरण का ध्यान	18
6.	सिद्ध लोक और सिद्ध शिला	20
7.	तीन लोक वंदना	22
8.	सुमेरु वंदना	23
9.	तीर्थंकरत्रय स्तोत्र	24

श्री शांतिनाथ स्तुतिः

(श्री समन्तभद्राचार्य रचित बृहत्स्वयंभू स्तोत्र से)

(उपजाति छंद)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां,
राजा चिरं योऽप्रतिम-प्रतापः।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शान्ति-
र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाऽघ-शान्तिम्।।1।।

चक्रेण यः शत्रु-भयङ्करेण,
जित्वा नृपः सर्व नरेन्द्र-चक्रम्।
समाधि-चक्रेण पुनर्जिगाय,
महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम्।।2।।

राज-श्रिया राजसु राज-सिंहो,
रराज यो राजसुभोग-तन्त्रः।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो,
देवाऽसुरोदार-सभे रराज।।3।।

यस्मिन्नभूद्राजनि राज-चक्रं,
मुनौ दया-दीधिति धर्म-चक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देव-चक्रं,
ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम्।।4।।

स्व-दोष-शान्त्या विहितात्म-शान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद् भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।।5।।

गतियों से आने-जाने के द्वार

'भवांतरावाप्तिः गतिः' एक भव को छोड़कर दूसरे भव के ग्रहण करने का नाम गति है। गति के चार भेद हैं–नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। एक-एक गति से आने के और उसमें जाने के कितने द्वार हैं सो ही देखिए–

नरकगति से आने-जाने के द्वार

(1) नरकगति से आने के दो द्वार हैं और नरकगति में जाने के भी दो ही द्वार हैं–एक मनुष्य और द्वितीय तिर्यंच। अर्थात् मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही मरकर नरकगति में जा सकते हैं तथा नरकगति से निकलकर जीव मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही हो सकते हैं, अन्य गति में नहीं जा सकते हैं।

असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पहले नरक तक ही जा सकते हैं इससे नीचे नरकों मेंनहीं चूँकि वे मन के बिना इतना अधिक पाप नहीं कर सकते हैं। सरीसृप तिर्यंचदूसरे नरक तक ही जा सकते हैं इससे नीचे नहीं। पक्षीगण कदाचित् नरक जावें तो तीसरेनरक तक ही जा सकते हैं इससे नीचे नहीं जा सकते हैं। सर्प चौथे नरक तक जा सकते हैं इससे नीचे नरकों में नहीं। सिंह कितना भी अधिक पाप क्यों न करे किन्तुवह पाँचवें नरक तक ही जन्म ले सकता है छठे या सातवें में नहीं। स्त्रियाँ अधिक से अधिकपाप करके भी छठे नरक तक ही जा सकती हैं, सातवें में नहीं चूँकि उनके उत्तम संहननों का अभाव है। पुरुष और मत्स्य सातवें नरक तक गमन करने की शक्ति रखते हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले महामत्स्य और उसके कान में रहने वाले तन्दुल मत्स्य यदि हिंसा करते हैं या तंदुल मत्स्य जो कि सभी जीवों के खाने का भाव ही किया करता है, ये मत्स्य हिंसा के अभिप्राय से सातवें नरक में भी चले जाते हैं। यह ते हुई नरक गति में जाने वालों की बात। अथवा नरक गति में जाने के ये दो ही गतिरूप द्वार बताये हैं। अब वहाँ से आने वालों की गतियों को देखिए–

सातवें नरक से निकला हुआ जीव क्रूर पंचेन्द्रिय पशु ही होता है, वह मनुष्य नहीं हो सकता है। छठे नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य भी हो सकता है अर्थात् तिर्यंच या मनुष्य इन दो ही गतियों में जन्म ले सकता है और यह मनुष्य या तिर्यंच मोहकर्म के मंद हो जाने से कदाचित् गुरुओं का उपदेश या देवों का सम्बोधन प्राप्त करके अथवा जिनेन्द्रदेव के जन्म आदि कल्याणकों को या रथयात्रा आदि महामहोत्सवों को देखकर अथवा जातिस्मरण हो जाने के निमित्त आदि कारणों से सम्यक्त्व को भी ग्रहण कर सकता है किन्तु इस छठे नरक से आये हुए जीव के भाव अणुव्रत या महाव्रत ग्रहण के नहीं हो सकते हैं चूँकि उसमें अभी इतने पापकर्म मंद नहीं हो पाते हैं। पाँचवें नरक से निकला हुआ जीव यदि मनुष्य हुआ है तो महाव्रत ग्रहण कर मुनि

होने की भी क्षमता रखता है तथा यदि तिर्यंच है तो वह देशव्रत ग्रहण कर सकता है। चतुर्थ नरक से निकले हुए जीव में से यदि कोई मनुष्य हुआ है तो वह कदाचित् मुनिपद ग्रहण कर केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है और यदि तिर्यंच है तो वह देशव्रतीतक हो सकता है। तीसरे नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर भी हो सकता है अर्थात् यदि किसी जीव ने यहाँ पर पहले नरकायु का बंध कर लिया अनन्तर उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ पुनः केवली भगवान के या श्रुतकेवली के पादमूल में सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया तो वह जीव मरने के कुछ क्षण ही पूर्व सम्यक्त्व से च्युत होकर तीसरे नरक में चला जाता है और वहाँ पर पर्याप्त अवस्था को प्राप्त होते हुए पुनः सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तो फिर वहाँ अपनी आयुपर्यंत सम्यग्दृष्टि रहता है और उसके वहाँ से निकलने के छह महीने पहले ही देवगण वहाँ पर जाकर उस नारकी जीव (भावी तीर्थंकर) की सुरक्षा की व्यवस्था बना देते हैं-उसके चारों ओर परकोटा सुरक्षित कर देते हैं तथा वे देवगण यहाँ मध्यलोक में जन्म नगरी में अतिशय शोभा करके माता के आंगन में रत्नों की वर्षा प्रारंभ कर देते हैं। श्री, ह्री आदि देवियाँ इन्द्र महाराज की आज्ञा से आकर माता की सेवा करती हैं, गर्भशोधन आदि क्रियाएँ करती हैं।

अनन्तर तीर्थंकर होने वाला वह जीव नरक से निकलकर माता के गर्भ में प्रवेश करता है तब इन्द्र शची सहित असंख्य देव परिवारों के साथ आकर तीर्थंकर के माता-पिता की पूजा करके महान उत्सव के साथ गर्भकल्याणक मनाते हैं। तात्पर्य यह रहा कि तीसरे नरक से निकलकर जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं।

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे और पहले नरक से निकले हुए जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं, केवली भी हो सकते हैं और मोक्षपद को भी प्राप्त कर सकते हैं किन्तु नरकों से निकले हुए जीव चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण या प्रतिनारायण नहीं हो सकते हैं यह बात विशेष है। इस तरह नरकगति से आने के द्वार अर्थात् गतियाँ बताई गई हैं। इसमें यह बात खासतौर से समझने की है कि जो नरक से निकलकर तीर्थंकर या केवली आदि होते हैं वह सब सम्यक्त्व का ही माहात्म्य है। सातवें नरक से जीव सम्यक्त्व लेकर नहीं निकल सकते हैं किन्तु अन्य नरकों से सम्यक्त्व लेकर भी निकल सकते हैं। सातों ही नरकों में जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं। नरकों में सम्यक्त्व के बहिरंग कारणों में वेदना अनुभव, जातिस्मरण और देवों द्वारा सम्बोधन, ये 3 कारण माने गये हैं। देवों द्वारा सम्बोधन तृतीय नरक तक ही है इससे नीचे कोई भी देव नहीं जाते हैं अतः चतुर्थ आदि नरकों में दो ही कारण हैं। यदि किसी मनुष्य ने पहले नरकायु बांध ली है और बाद में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है तो वह पहले नरक में ही जा सकता है, इससे नीचे नहीं।

नरकगति में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट आयु में तेंतीस

सागर प्रमाण है। इनकी आयु का विस्तृत वर्णन तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों से जानना चाहिए।

तात्पर्य यही समझना चाहिए कि बिना सम्यक्त्व के बिना यह जीव अनन्तों बार नरकगति में जा चुका है और वहाँ से आकर मनुष्य भव को भी प्राप्त कर संसार में ही घूमता रहता है। यदि संसार भ्रमण को समाप्त करना है तो सम्यक्त्व को ग्रहण करना चाहिए।

तिर्यग्गति से आने-जाने के द्वार

पंचेन्द्रिय पशु यदि मरण करते हैं तो वे चौबीसों दण्डक में (चारों गतियों में) जा सकते हैं। तो पहले आप चौबीस दण्डक को समझ लीजिए—

नरक गति का दण्डक–1, भवनवासी के दण्डक–10, ज्योतिषी देव का–1, व्यंतरों का–1, वैमानिक देवों का–1, स्थावर के–5, विकलत्रय के–3, पंचेन्द्रिय तिर्यंच का–1 और मनुष्य का–1, ऐसे 1+10 +1+1+1+5+3+1+1=24 ये चौबीस दण्डक माने गये हैं। इन चौबीस दण्डकों के नाम पं. दौलतराम जी कृत ''चौबीस दण्डक'' नामक पुस्तक से दिये गये हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच इन चौबीसों दण्डकों में जा सकते हैं और चौबीस दण्डक से आये हुए जीव पशु हो सकते हैं।

विकलत्रय अर्थात् दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय और चार इंद्रिय जीवों के जाने की तथा आने की दश ही गति हैं। ये विकलत्रय मरकर पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य इन दश स्थानों में जन्म ले सकते हैं तथा इन दश स्थानों से निकलकर ही विकलत्रय होते हैं अर्थात् विकलत्रय जीव तिर्यंच गति और मनुष्य गति में ही तो जन्म ले सकते हैं और तिर्यंच या मनुष्य ही मरकर विकलत्रय हो सकते हैं। ये विकलत्रय जीव मरकर देवगति या नरकगति में नहीं जा सकते हैं और न देवगति या नरकगति से निकलकर जीव विकलत्रय ही हो सकते हैं। इनका अस्तित्व भी कर्मभूमि में ही है। ये जीव न नरक भूमि में हैं, न स्वर्ग भूमि में हैं, न भोगभूमि में हैं और न असंख्यात द्वीप समुद्रों में ही जन्मते हैं। ये मात्र कर्मभूमियों में, लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र में, स्वयंभूरमण द्वीप के उत्तर भाग की कर्मभूमि में तथा स्वयंभूरमण समुद्र में ही जन्मते हैं, अन्यत्र ये नहीं पाये जाते हैं।

नारकियों के बिना बाकी शेष तेईस दंडक के जीव मरकर पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक[1] में जन्म ले सकते हैं अर्थात् भवनत्रिक देव और वैमानिक में ईशान स्वर्ग तक के देव मरकर इन तीनों स्थावर में जन्म ले सकते हैं तथा ये तीनों स्थावर मरकर देवगति और नरकगति के सिवाय सर्वत्र दश दण्डकों में अर्थात् पाँचों स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पशु और मनुष्य में जन्म ले सकते हैं।

तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव मरकर पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय

1. प्रत्येकवनस्पति में ही होते हैं, साधारण वनस्पति में नहीं।

और पंचेन्द्रिय पशु इन नव स्थानों में ही जन्म ले सकते हैं। वे मरकर मनुष्य, नारकी या देव नहीं हो सकते हैं। तथैव देव या नारकी भी इन दो स्थावरों में जन्म नहीं ले सकते हैं, किन्तु मनुष्य मरकर अग्निकायिक व वायुकायिक हो सकते हैं अर्थात् एक मनुष्य गति ही ऐसी गति है कि जिससे जाने के लिए सभी मार्ग खुले हुए हैं।

तिर्यंचों की आयु

शुद्ध पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु 12 हजार वर्ष, खर पृथ्वीकायिक जीवकी 22 हजार वर्ष, जलकायिक जीव की 7 हजार वर्ष, अग्निकायिक जीव की 3 दिन, वायुकायिक जीव की 3 हजार वर्ष और वनस्पतिकायिक जीव की 10 हजार वर्षप्रमाण है।

विकलेन्द्रियों में दो इन्द्रिय की 12 वर्ष, तीन इन्द्रियों की 49 दिन और चार इन्द्रियों की 6 मास प्रमाण है।

पंचेन्द्रियों में सरीसृप की उत्कृष्ट आयु 9 पूर्वांग, पक्षियों की 72 हजार वर्ष और सर्पों की 42 हजार वर्ष है। शेष तिर्यंचों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण है।

यह उपर्युक्त आयु पूर्व-पश्चिम विदेहों में उत्पन्न हुए तिर्यंचों के तथा स्वयंप्रभपर्वत के बाह्य कर्मभूमि भाग में उत्पन्न हुए तिर्यंचों के तो सर्वकाल पायी जाती है तथा भरत और ऐरावत क्षेत्र के भीतर चतुर्थकाल के प्रथम भाग में किन्हीं तिर्यंचों के पाई जाती है।

एकेन्द्रिय जीवों की जघन्य आयु उच्छ्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है तथा विकलेन्द्रिय एवं सकलेन्द्रियों की क्रमशः इससे उत्तरोत्तर संख्यातगुणी है।

उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि के तिर्यंचों की उत्कृष्ट आयु क्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य है। शाश्वत भोगभूमियों में जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट ये तीन प्रकार ही हैं।

अशाश्वत भोगभूमि में से जघन्य भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट एक पल्य प्रमाण है और मध्यम आयु के भेद अनेक प्रकार हैं। मध्यम भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य और उत्कृष्ट आयु दो पल्य है तथा मध्यम में अनेक भेद हैं। उत्तम भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है, मध्यम के अनेक भेद हैं।

हैमवत, हरि, विदेह के देवकुरु-उत्तरकुरु, रम्यक् और हैरण्यवत् ये छह, ऐसे ही पाँच मेरु संबंधी 30 भोगभूमि शाश्वत अनादिनिधन हैं उनमें परिवर्तन का कोई सवाल ही नहीं है तथा पाँच भरत और पाँच ऐरावतों के आर्य खण्डों में जो षट्काल परिवर्तन से तीन कालों में उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि होती हैं, वे अशाश्वत हैं उनमें अवसर्पिणी युग में क्रम से हानि और उत्सर्पिणी में क्रम से वृद्धि चलती रहती है। वहीं पर जघन्य, मध्यम आयु होती हैं।

भोगभूमिज तिर्यंचों के आने-जाने के द्वार—कर्मभूमियाँ मनुष्य और पंचेन्द्रिय

तिर्यंच ही भोगभूमि में जाते हैं तथा भोगभूमि से मरकर तिर्यंच जीव नियम से देवगति में ही जाते हैं। भवनत्रिक से ईशान स्वर्ग तक इनका जाने का मार्ग खुला है। कर्मभूमि के असंयत सम्यग्दृष्टी या देशव्रती तिर्यंच अधिक से अधिक सोलहवें[1] स्वर्ग तक जा सकते हैं, ऐसा भी विधान है।

तिर्यंचों में गुणस्थान—पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों के अतिरिक्त पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनके एक मिथ्यात्व[2] गुणस्थान रहता है अर्थात् ये बेचारे मिथ्यादृष्टी ही बने रहते हैं।

भरत, ऐरावत के आर्यखण्ड के तिर्यंचों में पाँच गुणस्थान तक हो सकते हैं। पाँच विदेहों में, विद्याधर श्रेणियों में व स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग में तिर्यंचों के पाँच गुणस्थान तक देखे जाते हैं।

म्लेच्छों के तिर्यंचों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है।

भोगभूमिज तिर्यंचों के पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा ये चार गुणस्थान तक हो सकते हैं। वहाँ पर पाँचवाँ देशविरत गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व प्राप्ति के कारण-कितने ही तिर्यंच गुरुओं के उपदेश से या देवों के प्रतिबोध से तथा कितने ही जीव स्वभाव से प्रथमोपशम अथवा वेदक सम्यक्त्व ग्रहण कर लेते हैं तथा कितने ही सुख-दुःख को देखकर, कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही जिनेन्द्र महिमा के दर्शन से और कितने ही जिनबिम्ब के दर्शन से सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लेते हैं। इसी प्रकार से कर्मभूमिज जीव गुरुओं के उपदेश या देवों के प्रतिबोध आदि कारणों से पाँच अणुव्रतों को ग्रहणकर देश-संयत भी हो जाते हैं। तिर्यंचगति में सम्यक्त्व प्राप्ति के मुख्य तीन कारण हैं—जाति स्मरण, धर्मोपदेश और जिनबिम्बदर्शन।

सम्यग्दृष्टी तिर्यंच मरकर नियम से देवगति में वैमानिक देव होते हैं अर्थात् भवनत्रिक में नहीं जाते हैं और न अन्यत्र तीन गतियों में ही जाते हैं। यदि इन्होंने पहले तिर्यंचायु या मनुष्यायु बांध ली, पीछे सम्यक्त्व ग्रहण किया है तो सम्यक्त्व सहित ये जीव भोगभूमि के तिर्यंच या मनुष्य हो जाते हैं पुनः वहाँ से नियम से सौधर्म या ईशान स्वर्ग में देव हो जाते हैं।

इन तिर्यंचों में से भोगभूमिज तिर्यंचों में संकल्पवश से केवल एक सुख ही होता है और कर्मभूमिज तिर्यंचों में सुख-दुःख दोनों ही पाये जाते हैं।

मनुष्यगति से आने-जाने के द्वार

मनुष्यगति में प्राप्त करने योग्य सबसे श्रेष्ठ जो स्थान 'मुक्तिधाम' है यदि आप इस मनुष्य पर्याय से उस मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त करने के लिए धर्म पुरुषार्थ का

1. त्रिलोकसार गाथा 545। 2. तिलोयपण्णत्ति पृ. 613। किन्हीं ग्रंथों में इनके अपर्याप्तकाल में द्वितीय गुणस्थान होता है।

अवलंबन कर लेते हैं तो ठीक है अन्यथा इस चिंतामणि सदृश मनुष्य गति से आप निगोद में भी जा सकते हैं-जहाँ से पुनः निकलना बहुत ही दुर्लभ हो जाता है अतः सभी पर्यायों में सार मनुष्य पर्याय है, मनुष्य पर्याय का सार संयम है और संयम का सार निर्वाण सुख है, ऐसा समझकर संयम को ग्रहण कर लेना चाहिए।

मनुष्य चौबीसों दण्डक में जा सकता है इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है। यह मनुष्य मुक्ति को भी प्राप्त करके तीन लोक का स्वामी हो सकता है। चूँकि मुनि बने बिना कोई भी जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है और मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी मुनि हो नहीं सकता। जो सम्यग्दृष्टी मुनि होते हैं वे ही इस संसार समुद्र को पार कर शिवधाम में पहुँचते हैं वहाँ पर जाकर अविनश्वर हो जाते हैं फिर पुनः उन्हें यहाँ आने का कोई मार्ग ही नहीं रहता है। वहाँ पर वे शाश्वत चिच्चैतन्य-स्वरूप अपनी आत्मा में ही निवास करते हैं और परमानंदमय सुख का अनुभव करते रहते हैं।

इस प्रकार से मनुष्यगति से जाने के गति द्वार पच्चीस हो जाते हैं तथा मनुष्यगति में आने के द्वार बाईस ही हैं। चूँकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मरकर मनुष्य नहीं हो सकते हैं तथा पच्चीसवाँ दण्डक जो सिद्धगतिरूप है वहाँ से आने का तो सवाल ही नहीं उठता है। यह तो सामान्य मनुष्यों की बात हुई है। अब विशेष अर्थात् पदवीधारी मनुष्यों की गति-आगति को देखिए–

तीर्थंकर के आने के दो द्वार हैं– या वे स्वर्ग से आते हैं या नरक से और पुनः वे गति अर्थात् जन्म को धारण नहीं करते हैं बल्कि उसी भव से लोक के अग्रभाग पर जाकर विराजमान हो जाते हैं अतः तीर्थंकर के आने के द्वार दो हैं और जाने का द्वार एक पच्चीसवें दण्डकरूप मोक्ष ही है।

चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र ये स्वर्ग- लोक से ही आते हैं अतः इनके आने का द्वार एक ही है तथा इनमें से चक्रवर्ती स्वर्ग, नरक या मोक्ष इन तीन स्थानों में जा सकते हैं। यदि चक्रवर्ती तपश्चरण करते हैं अर्थात् दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं तो स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और यदि राज्य में मरण करते हैं तो नरक में चले जाते हैं किन्तु अंत में ये मोक्ष को नियम से प्राप्त करते हैं चूँकि पदवीधारी हैं। बलभद्रों के लिए जाने के दो ही द्वार हैं– स्वर्ग या मोक्ष। क्योंकि ये नियम से तपश्चरण धारण करते हैं। अर्धचक्री अर्थात् नारायण और प्रतिनारायण ये नियम से नरक ही जाते हैं चूँकि ये राज्य में ही मरते हैं अतः ये उस ही भव से मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकते हैं किन्तु अंत में ये नियम से निर्वाण प्राप्त करते ही करते हैं अर्थात् ये चक्रवर्ती या अर्धचक्री उस भव से यदि नरक भी चले जाते हैं तो भी कतिपय भवों को धारण कर पुनः ये मोक्ष अवश्य प्राप्त करते हैं। चूँकि पदवीधारक पुरुषों के आखिर में मोक्ष का नियम ही है। यह शलाका पुरुषों की बात हुई। इनके अतिरिक्त भी जो पदवीधर हैं उनके विषय में पढ़िये–

जो कुलकर हो जाते हैं, या नारद हो जाते हैं या रुद्र हो जाते हैं और कामदेव हो जाते हैं या तीर्थंकर के माता-पिता हो जाते हैं, वे भी इन पदों को धारण करने के बाद कुछ भव के बाद मोक्ष को अवश्य ही प्राप्त करते हैं चूँकि इन पदों को धारण करने वाले जीव बहुत काल तक संसार में भ्रमण नहीं कर सकते हैं। कुलकर चौदह होते हैं, नारद नव होते हैं, रुद्र ग्यारह होते हैं[1] और कामदेव चौबीस होते हैं।

कुलकर स्वर्ग में ही जाते हैं अतः इनके जाने का एक ही द्वार है तथा आने में ये इस अवसर्पिणी में तो विदेह क्षेत्र में पहले मनुष्यायु बांध कर पीछे क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुए हैं अतः वे यहाँ भरतक्षेत्र के तृतीय काल के अंत में भोगभूमि में कुलकर हुए हैं। जन्मांतर में ये भी निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

कामदेव पदवी धारक पुरुष नियम से कामदेव का नाशकर मोक्षधाम को प्राप्त करते हैं। नारद और रुद्र अधोगति में ही अर्थात् नरक में ही जाते हैं क्योंकि नारद तो कलहप्रिय होते हैं और रुद्र अपने जीवन को पाप से कलंकित कर लेते हैं। फिर भी ये नारद और रुद्र भी जन्मांतर में नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

तीर्थंकर के पिता या तो स्वर्ग जाते हैं या सिद्धपद प्राप्त करते हैं अतः इनके भी जाने के दो ही द्वार हैं। माता स्वर्ग ही जाती हैं पुनः अल्पकाल में ही निर्वाण को प्राप्त कर लेती हैं।

शाश्वत भोगभूमि और अशाश्वत भोगभूमि दोनों भोगभूमि से मनुष्यों के जाने का एक ही द्वार है– देवगति अर्थात् भवनत्रिक या सौधर्म-ईशान स्वर्ग तक ये जीव मरकर जा सकते हैं। भोगभूमि में आने के दो द्वार हैं-कर्मभूमि के पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य। अर्थात् ये ही जीव मरकर भोगभूमि में जा सकते हैं।

मनुष्यों की आयु– मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व वर्ष की है और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। यह आयु कर्मभूमियाँ जीवों की है। पूर्व-पश्चिम विदेहें तथा चतुर्थकाल के पूर्वकाल में यह उत्कृष्ट आयु होती है। मध्यम आयु के अनेक भेद हैं। भोगभू में उत्तम में तीन पल्य, मध्यम में दो पल्य और जघन्य में एक पल्य आयु है। परिवर्तनशील भोगभूमियों में उत्कृष्ट तो यही आयु है। जघन्य आयु उत्तम भोगभूमि में एक समय अधिक दो पल्य, मध्यम भोगभूमि में एक समय अधिक एक पल्य और जघन्य भोगभूमि में एक समय अधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण है तथा मध्यम आयु के अनेक भेद हैं।

लवण समुद्र आदि में कुभोगभूमियों में कुमानुष रहते हैं, ये भी मरकर देवगति को ही प्राप्त करते हैं।

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण-उत्तर श्रेणियों में जो मनुष्य रहते हैं वे विद्याधर कहलाते हैं। इनमें कुछ विद्याएँ जाति और कुल की परम्परा से प्राप्त रहती है, कुछ विद्याएँ सिद्ध करके ये लोग नाना प्रकार से विद्याओं के निमित्त से सुखों का अनुभव करते हैं।

1. नव नारद और ग्यारह रुद्र हुंडावसर्पिणी में ही होते हैं। (तिलोयपण्णत्ति पृ. 355)

मनुष्यों में गुणस्थान व्यवस्था—विदेह क्षेत्रों में हमेशा चौदहों गुणस्थान पाये जाते हैं अर्थात् वहाँ से हमेशा मोक्ष का द्वार खुला रहता है। भोगभूमि में चार गुणस्थान तक ही हो सकते हैं। सभी म्लेच्छों के मनुष्यों को वहाँ पर एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है।

विद्याधरों के चौदह गुणस्थान तक हो जाते हैं, जबकि ये विद्याओं को छोड़कर दीक्षा ले लेते हैं तब, अन्यथा विद्यासहित अवस्था में पाँच गुणस्थान तक हो सकते हैं अर्थात् विद्या सहित जीव कदाचित् क्षुल्लक बन सकते हैं किन्तु मुनि नहीं बन सकते।

भरत-ऐरावत क्षेत्र में मनुष्यों के चतुर्थकाल में चौदह गुणस्थान होते हैं। चतुर्थकाल के जन्मे हुए मनुष्य कदाचित् पंचमकाल में मोक्ष जा सकते हैं किन्तु पंचमकाल के जन्मे हुए नहीं जा सकते। पंचमकाल में उत्तम तीन संहनन के न होने से अधिक से अधिक सोलह स्वर्ग तक का मार्ग खुला है। कदाचित् कोई महामुनि लौकांतिक देव भी हो सकते हैं अर्थात् पंचमकाल में छठा, सातवाँ गुणस्थान होता है अतः मुनियों का अस्तित्व अंत तक है।

सम्यक्त्वग्रहण के कारण—कितने ही मनुष्य गुरुओं के उपदेश से या देवों के प्रतिबोधन से अथवा स्वभाव से सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लेते हैं। कितने ही मनुष्य जातिस्मरण से, कितने ही जिनेन्द्रदेव के कल्याणकों को देखकर, कितने ही जीव जिनबिम्ब के दर्शन से औपशमिक आदि सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते हैं क्षायिक सम्यक्त्व तो केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही प्रगट होता है अतः आज पंचमकाल में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हो सकता है। मनुष्यगति में सम्यक्त्व उत्पत्ति के मुख्य तीन कारण हैं—जातिस्मरण, धर्मोपदेश एवं जिनबिम्बदर्शन।

सम्यक्त्वग्रहण के पहले यदि इसने तिर्यंचायु या मनुष्यायु बांध ली है पुनः क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया तो यह जीव भोगभूमि का तिर्यंच या मनुष्य होगा, अन्यथा स्वर्ग ही जाएगा। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असैनी आदि नहीं होता है, स्त्री या नपुंसक नहीं होता है और न वह दरिद्री, विकलांग, अल्पायु ही होता है किन्तु महापुरुष होकर कालांतर में या उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भव्यात्माओं! आपको शायद देवगति सबसे अधिक प्रिय लगती हो, किन्तु देखिये! देवगति के सुख भोगकर यह जीव वहाँ की आयु पूर्णकर नियम से मरेगा और मरकर तिर्यंच होगा या मनुष्य। यदि मिथ्यादृष्टि है और वहाँ के भोगों को छोड़ते हुए अधिक संक्लेश हो रहा है तो प्रायः वही जीव एकेन्द्रिय स्थावर योनि में पृथ्वी, जल या वनस्पति हो जाता है, फिर वहाँ से निकलने का क्या उपाय है! इन्हीं तुच्छ कुयोनियों में यह जीव भटकता रहता है क्योंकि एकेन्द्रिय में कान के बिना गुरू का उपदेश आदि है ही नहीं, अतः देवगति की इच्छा नहीं करना चाहिये।

देवगति से आने-जाने के द्वार

देवों के तेरह दंडक माने हैं—भवनवासी देवों के 10, व्यंतरवासी देवों का 1, ज्योतिषी देवों का 1 और वैमानिक देवों का 1, ऐसे 10 + 1 + 1 + 1 = 13 दंडक देवसंबंधी हैं।

मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच इनके बिना कोई भी देवपद को प्राप्त नहीं कर सकते हैं अर्थात् स्थावर व विकलत्रय तिर्यंच देवगति प्राप्त नहीं कर सकते हैं तथा देव और नारकी भी देवगति प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

देवों के लिये जाने के पाँच द्वार हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रिय पशु और मनुष्य। अर्थात् देव मरकर इन पाँच पर्यायों में जन्म धारण कर सकते हैं। भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषी देव तथा वैमानिक देवों में से सौधर्म-ईशान इन दो स्वर्गों तक के देव ही मरकर कदाचित् स्थावर योनि में जन्म ले सकते हैं, इनसे आगे के देव नहीं तथा बारहवें स्वर्ग तक के देव मरकर कदाचित् पंचेन्द्रिय तिर्यंच हो सकते हैं आगे के नहीं। अर्थात् दूसरे स्वर्ग तक देवों के लिये तीन स्थावर काय, पशु और मनुष्य इन पाँचों में आने का द्वार खुला हुआ है, तीसरे स्वर्ग से लेकर बारहवें स्वर्ग तक के देवों के लिए स्थावर का द्वार बंद हो गया है, मात्र पंचेन्द्रिय पशु और मनुष्य इनका द्वार खुला हुआ है, तथा उससे ऊपर के देवों के लिए एक मनुष्य का ही द्वार शेष है बाकी सभी द्वार बंद हैं। ये तो देवों के आने के द्वार आपने सुने, अब जाने के द्वार भी देखिये—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य ही देवगति को प्राप्त कर सकते हैं अन्य नहीं। इसमें भी भोगभूमि के मनुष्य या पशु मरकर भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में अथवा सौधर्म, ईशान स्वर्ग में जन्म ले सकते हैं अर्थात् इनके लिये दूसरे स्वर्ग तक ही मार्ग खुला हुआ है, आगे नहीं। किन्तु देव, मरकर भोगभूमि में जन्म नहीं ले सकते हैं, यह नियम है। कर्मभूमियां मनुष्य और तिर्यंच ही भोगभूमि में जाते हैं अन्य कोई नहीं जा सकते हैं।

कर्मभूमि के तिर्यंच यदि सम्यक्त्व और अणुव्रत धारण कर लेते हैं तो वे बारहवें[1] स्वर्ग तक चले जाते हैं।

असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य बारहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं।

अन्यमती साधु पंचाग्नि तप करके भवनत्रिक देवों तक जा सकते हैं। पारिव्राजक और दंडी साधु अधिक से अधिक पाँचवें स्वर्ग तक जा सकते हैं। परमहंस नामक साधु बारहवें[2] स्वर्ग तक जा सकते हैं इसके ऊपर नहीं जा सकते । परमत से मोक्ष की सिद्धि नहीं है चूँकि कर्मों का नाश जैनमत के बिना सर्वथा असम्भव ही है।

श्रावक और श्राविकाएँ भले ही वे क्षुल्लक, ऐलक या क्षुल्लिका ही क्यों न हों किन्तु ये सोलहवें स्वर्ग तक ही जा सकते हैं, इसके आगे नहीं। क्योंकि बिना मुनिपद

1. त्रिलोकसार गाथा 545 में सोलहवें तक जाने का विधान है। 2. कांजी आदि का भोजन करने वाले, नग्न आजीवक अच्युत-सोलहवें स्वर्गपर्यन्त उत्पन्न होते हैं। (त्रिलोकसागर गाथा 547 की टीका)

धारण किये आगे जाना असंभव है। द्रव्यलिंगी मुनि नवग्रैवेयक तक जा सकते हैं, आगे नहीं। भावलिंगी महामुनि ही नवअनुदिश और पाँच अनुत्तरों में जन्म लेते हैं।

यह जीव कितनी ही बार देवपद को प्राप्त कर चुका है किन्तु उनमें भी कुछ ऐसे पद हैं जिन्हें नहीं पाया, नहीं तो अब तक मोक्ष को प्राप्त कर लेता।

इंद्र पद को इसने नहीं पाया अर्थात् सौधर्म आदि छह दक्षिणेंद्र नियम से एक भवावतारी होते हैं। उन्हीं के लोकपाल पद को भी इसने नहीं पाया चूँकि वे भी मोक्षगामी हैं। शचीदेवी भी नियम से वहाँ से नरलोक में आकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं चूँकि तीर्थंकरों के जन्म महोत्सव में जब इंद्राणी बालक को प्रसूतिगृह में लेने जाती हैं उस समय उन्हें तीर्थंकर शिशु को स्पर्श कर इतना आनन्द होता है कि वेउसी समय अपनी स्त्रीपर्याय का छेद कर देती हैं। दूसरी बात यह है कि शचिदेवी को नियम से उस पर्याय में सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद पुनः स्त्रीवेद का बंध नहीं होता है।

लौकांतिक देव तथा अनुत्तरवासी देवों के लिये भी निर्वाण का नियम है। लौकांतिक देव तो एक भवावतारी ही होते हैं और विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित इन विमानों के देव द्विचरम माने गये हैं अर्थात् अधिक से अधिक दो भव लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा सर्वार्थसिद्धि के देव नियम से वहाँ से आकर एक भव से ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

इस सर्वार्थसिद्धि के ऊपर सिद्धलोक में जाने वाले जीव अर्थात् मुक्त होने वाले जीवों के आने का द्वार तो बंद ही है और मुक्तगति में जाने के लिए एक मनुष्यगति का ही द्वार है।

भवनवासी, व्यंतरवासी और ज्योतिषी इन तीन प्रकार के देवों में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं लेते हैं किन्तु वहाँ पर सम्यक्त्व ग्रहण कर सकते हैं।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारण—कोई देव जिनमहिमा के दर्शन से, कोई जातिस्मरण से, कोई देवों की ऋद्धि देखने से, कोई पाँच कल्याणकों का उत्सव देखने से और कोई देव उपदेश के श्रवण से सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लेते हैं अतः भवनत्रिकों में भी चार गुणस्थान होते हैं। देवगति में सम्यक्त्वोत्पत्ति के मुख्य चार कारण माने हैं— जातिस्मरण, जिनमहिमादर्शन, धर्मोपदेश एवं देवर्द्धिदर्शन।

कल्पवासी देवों में भी नवग्रैवेयक तक भाव मिथ्यादृष्टी जीव जा सकते हैं, द्रव्य से मिथ्यावेषधारी पाखंडी अर्थात् जिनमत के बाह्य साधु तो बारहवें स्वर्ग के ऊपर नहीं जा सकते हैं। आगे के विमानों में अर्थात् नवअनुदिश और अनुत्तरों में सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं अतः नवग्रैवेयक तक जीव यदि मिथ्यादृष्टी हैं तो वे सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते हैं इसलिये वहाँ तक चारों गुणस्थान होते हैं।

प्रवचनकार के लिए आवश्यक निर्देश

प्रवचनकर्त्ता विद्वान् को पहले निम्नलिखित चार बातों को समझ लेना अति आवश्यक है—प्रवचनकर्त्ता, प्रवचन का विषय, प्रवचन और प्रवचन का फल। अर्थात् प्रवचनकर्त्ता कैसा होना चाहिए ? उसमें क्या-क्या गुण आवश्यक हैं ? प्रवचन का विषय क्या है ? प्रवचन किसे कहते हैं ? और प्रवचन का फल क्या है ?

इन चारों को समझकर प्रवचन करने वाला विद्वान् स्वपर हितकारी होता है।

1. प्रवचनकर्त्ता

रत्नत्रय से विभूषित आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन प्रकार के दिगम्बर मुनि ही मुख्यरूप से प्रवचनकर्त्ता होते हैं, किन्तु गौणरूप से विद्वान् श्रावक भी हो सकते हैं।

श्री गुणभद्रसूरि ने प्रवक्ता आचार्य के गुणों का वर्णन बहुत ही सुंदर किया है—

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिंदया,
ब्रूयाद् धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।।5।।

अर्थ—बुद्धिमान्, समस्तशास्त्रों के रहस्य का ज्ञाता, लोक व्यवहार से परिचित, आशारहित, प्रतिभावान्, शांतचित्त, पहले ही उत्तर को देखकर रखने वाला, प्रायः प्रश्नों को सहन करने वाला, प्रभावशाली, पर को मनोज्ञ, पर की निंदा नहीं करने वाला, स्पष्ट और मधुर वचन बोलने वाला तथा गुणों का निधान ऐसा आचार्य धर्म का उपदेश देता है।

इस श्लोक में धर्मोपदेशक आचार्य के प्रमुख 12 गुण माने गये हैं। ये ही गुण विद्वान्, प्रवक्ता में भी होने चाहिए। यद्यपि इन सामान्य गुणों में सभी विशेष गुण अंतर्भूत हो जाते हैं तो भी वर्तमान की स्थिति के अनुसार वक्ता के कुछ आवश्यक गुणों का चयन निम्नानुसार है—

आवश्यक गुण

1. प्रवचनकर्त्ता विद्वान् को सच्चे देव, शास्त्र और गुरु पर दृढ़ श्रद्धान होना चाहिये।

2. चारों अनुयोगों का स्वाध्याय करके उनका तलस्पर्शी ज्ञान होना चाहिये।

3. कम से कम पाँच अणुव्रतों का पालन, सप्त व्यसन, रात्रि भोजन और अभक्ष्यभक्षण का त्याग अवश्य होना चाहिए। पर्व के दिनों में शुद्ध भोजन करने वाला तथा कुलीन और शीलवान होना चाहिये।

4. नित्य ही देवपूजा, गुरुभक्ति आदि करने वाला होना चाहिए। कम से कम देवदर्शन का नियम तो अवश्य ही होना चाहिये।

5. स्वाध्यायप्रेमी, शांतचित्त और गम्भीर होना चाहिये।

6. पूर्वाचार्यों के ग्रंथों को साक्षात् भगवान की वाणी बताते हुये उन ग्रंथों केप्रति व उनके रचयिता आचार्यों के प्रति सभा में श्रद्धा का स्रोत प्रवाहित कर देना चाहिए।

7. चारित्र की दुर्लभता और उपादेयता का वर्णन करते हुए वर्तमान के चारित्रधारी त्यागी-व्रतियों के प्रति श्रद्धालु बनाते हुये श्रावकों को उनकी भक्ति करने की व शक्त्यनुसार देशचारित्र ग्रहण करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

8. निश्चयनय और व्यवहारनय के विषय को सही समझाकर व्यवहार कहाँ तक उपादेय है और निश्चय कहाँ से प्रारंभ होता है ? इस पर विशद प्रकाश डालना चाहिये

9. 'मैं एक भी शब्द यदि आगम के विरुद्ध बोल दूँगा, तो निगोद का भागी हो जाऊँगा', ऐसे भय से सहित होकर जिनेन्द्रदेव की आज्ञा के भंग से सदैव डरते रहना चाहिये।

10. किसी के दबाव से या ख्याति, लाभ, पूजादि की लालसा से कभी भी आगम विरुद्ध प्रतिपादन नहीं करना चाहिये और न आगम विरुद्ध कथन का समर्थन ही करना चाहिये।

11. उपदेश की सभा में प्रश्नोत्तर न रखकर उससे अतिरिक्त समय में प्रश्नों के लिये समय देना चाहिये क्योंकि सभा के मध्य प्रश्नोत्तर से उपदेश का क्रम भंग हो जाता है।

12. यदि कदाचित् सभा में प्रश्न आ भी जावें तो शांति से उनका आगम के अनुकूल उत्तर देना चाहिये। कैसे ही प्रश्न क्यों न हों, किन्तु उत्तेजित नहीं होना चाहिये। शांति से यदि समस्या न सुलझे तो मौनपूर्वक सभा विसर्जित कर देनी चाहिये पुनः वार्तालाप करना चाहिये, किन्तु उपदेश की गद्दी से अतिचर्चा या विसंवाद नहीं करना चाहिए।

13. उपदेश में ग्राम्य, अश्लील या हल्के शब्दों का तथा ऐसे ही हीन उदाहरणों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

14. उपदेश में उदाहरण प्रायः अपने प्रथमानुयोग से ही लेना चाहिये। इससे श्रोताओं को अपने सही इतिहास का ज्ञान भी हो जाता है और प्रमाणिकता भी रहती है। यदि कदाचित् अन्य कोई श्वेताम्बर कथाएँ या अन्य सम्प्रदाय की कथाएँ कहें भी तो उन्हें स्पष्ट कर देना चाहिये कि यह कथा श्वेताम्बर मत के आधार से है अथवा अन्य सम्प्रदाय की है।

15. तेरहपंथ-बीसपंथ की चर्चा उपदेश में नहीं लाना चाहिये। यदि कोई समझना चाहता है तो उसे पृथक् से आगम के प्रमाण दिखा देना चाहिये। चूँकि इस पंथभेद का उल्लेख आगम में तो है नहीं, वर्तमान में मात्र यह पूजन पद्धति से ही संबंध रखता है अतः इस विषय को सभा में मुख्य नहीं करना चाहिये।

16. सभा में श्रीमन्तों आदि के बार-बार नाम नहीं लेना चाहिए, प्रायः इससे पक्षपात का वातावरण बन जाता है।

17. वर्तमान के विवादास्पद विषयों में किसी का व्यक्तिगत नाम लेकर उसकी निंदा सभा में नहीं करनी चाहिये। किसी के प्रति आक्षेप, किसी की भर्त्सना या आलोचना सभा में नहीं करना चाहिये।

18. उपदेश करते समय भौहें नहीं चलाना चाहिए, न उँगलियाँ चटकाना चाहिये। गंभीर मुद्रा में बैठकर या खड़े होकर न अति उच्च और न अति धीमे किन्तु मध्यम स्वर से मधुर शब्दों में उपदेश करना चाहिये। कदाचित् बड़ी सभा में उच्चस्वर से भी बोलना पड़े तो बोल सकते हैं किन्तु शब्दों में कर्कषता (कठोरता) नहीं होनी चाहिये।

19. शुभभाव कब छूटते हैं ? किस नय से या किस गुणस्थान में वे हेय हैं ? श्रावकों का कर्तव्य क्या है ? इन विषयों पर स्पष्ट विवेचन करना चाहिये।

20. सार्वजनिक सभाओं में मद्य, माँस, मधु त्याग, सप्त व्यसन त्याग, अहिंसा का पालन और पाँच अणुव्रत ग्रहण आदि का उपदेश प्रधान रखना चाहिये। सम्यक्त्व व मिथ्यात्व की चर्चा गौण रखनी चाहिए।

21. उपदेश के विषय का चयन प्रायः श्रोताओं की योग्यता के अनुरूप होना चाहिये, उनकी इच्छा के अनुरूप नहीं।

2. प्रवचन का विषय

जिनेन्द्रदेव की वाणी ही प्रवचन का विषय है अतः कम से कम निम्नलिखित ग्रंथों का स्वाध्याय प्रवचनकर्त्ता को अवश्य ही होना चाहिए।

1. प्रथमानुयोग में—महापुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, पांडवपुराण, आराधनाकथाकोश, पुण्यास्रव-कथाकोश, बृहत्कथाकोश, जम्बूस्वामी चरित, धन्यकुमार चरित, महावीर चरित, श्रेणिक चरित आदि।

2. करणानुयोग में—जैन ज्योतिर्लोक, त्रिलोकभास्कर, जम्बूद्वीप, गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, पंचसंग्रह आदि। यदि लब्धिसार, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीपपण्णत्ति, तिलोयपण्णत्ति, धवला, जयधवला, महाबंध आदि ग्रंथ भी पढ़ लेवें तो विशेषता ही रहेगी।

3. चरणानुयोग में—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, वसुनंदि श्रावकाचार, उमास्वामी श्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, सागार-धर्मामृत, भावसंग्रह, आत्मानुशासन, पद्मनंदिपंचविंशतिका आदि आवश्यक हैं। पुनः हो सके तो मुद्रित हुए सभी श्रावकाचार, मूलाचार, अनगार धर्मामृत, भगवती आराधना आदि भी पढ़ लेवें।

4. द्रव्यानुयोग में–द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, बृहद्द्रव्यसंग्रह, सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक, आलापपद्धति, नयचक्र, सप्तभंगीतरंगिणी, परमात्मप्रकाश, नियमसार, प्रवचनसार, समयसार आदि ग्रंथों को क्रम से पढ़ना चाहिए।

इन ग्रंथों में से किसी भी ग्रंथ को प्रवचन का विषय बनाना चाहिए। जिस ग्रंथ पर प्रवचन करना है उसे पुनः एक बार आद्योपांत पढ़ लेना चाहिए। यदि अकस्मात् बीच में से किसी विषय पर बोलना है तो भी इन्हीं के आधार से कोई विषय लेना चाहिए। आचार्य कुंदकुंद के ग्रंथों का व उनके पूर्ववर्ती आचार्य गुणधर, यतिवृषभ, पुष्पदंत और भूतबली के ग्रंथों के भी प्रमाण उद्धृत करके बोलना चाहिए तथा कुंदकुंददेव के उत्तरवर्ती आचार्य उमास्वामी, समंतभद्र, अमृतचंद्रसूरि आदि के वचन भी प्रस्तुत करना चाहिए। चूँकि आर्षवाणी ही प्रवचन का विषय है।

3. प्रवचन

रत्नत्रय का उपदेश देना या उनसे संबंधित महापुरुषों का इतिहास सुनाना, जीवादि सात तत्त्वों का विवेचन करना, आत्मा के–बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा आदि भेदों को कहना, इसका नाम प्रवचन है।

4. प्रवचन का फल

प्रवचन सुनकर श्रोता मिथ्यात्व, असंयम, प्रमाद और कषाय से डरकर उनसे यथाशक्ति हटकर मोक्षमार्ग में–सम्यक्त्व, संयम और समभाव में प्रवृत्त हो जावे, यही प्रवचन का फल है। इसी फल के साक्षात् और परम्परा ऐसे दो भेद हो जाते हैं।

1. साक्षात फल

(क) वक्ता का उपदेश ऐसा होना चाहिए कि श्रोतागण मिथ्यात्व को छोड़कर देव, शास्त्र, गुरु के परमभक्त बन जावें। उनमें पूज्य पुरुषों के प्रति आदरभाव और विनय प्रवृत्ति आ जावे तथा उद्दंड व अनर्गल प्रवृत्ति छूट जावे।

(ख) वर्तमान के उपलब्ध जिनागम के प्रति अकाट्य श्रद्धा व वर्तमान के साधुवर्गों के प्रति असीम भक्ति उमड़ आवे।

(ग) शक्त्यनुसार चारित्र ग्रहण करने में प्रवृत्त हो जावें। अन्याय, अभक्ष्य और दुर्व्यसनों को छोड़ देवें तथा देवपूजा, आहारदान, स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रमाद छोड़कर तत्पर हो जावें।

2. परम्परा फल–व्यवहाराभास और निश्चयाभास क्या है ?

पूर्वोक्त प्रकार से प्रवचनकर्त्ता आदि चार बातों को संक्षेप से कहा गया है। उसी प्रकार से व्यवहाराभासी-निश्चयाभासी के लक्षण भी समझ लेना चाहिए।

प्रवचन का परम्पराफल स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कर लेना ही है।

व्यवहाराभासी

जो मुनि या श्रावक व्यवहार चारित्र का पालन करते हैं, अपनी छह आवश्यक क्रियाओं में तत्पर रहते हैं वे व्यवहाराभासी हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनको आत्मतत्त्व का श्रद्धान नहीं है अथवा वे निश्चयनय या शुद्धात्म तत्त्व को उपादेय नहीं समझते हैं ऐसा भी नहीं माना जा सकता है। चूँकि किसी के अंतरंग का निर्णय करना बहुत ही कठिन है, यह बात तो सर्वज्ञ-गम्य ही है। तत्त्ववेत्ता आत्मज्ञानी और तत्त्वशून्य दोनों की बाह्यचर्या समान भी देखने को मिल सकती हैं। हाँ! जो ख्याति, लाभ या प्रतिष्ठा के लिए ही चारित्र ग्रहण करते हैं अथवा यह व्यवहार चारित्र परम्परा से मोक्ष का कारण है ऐसा न समझकर साक्षात् इसी को मोक्ष का कारण मान लेते हैं, आत्मज्ञान से सर्वथा पराङ्मुख हैं, वे व्यवहाराभासी हैं।

निश्चयाभासी

जो परिग्रह और भोगों में आसक्त रहते हुए भी अपनी आत्मा को सर्वथा शुद्ध, सिद्धस्वरूप मानते हैं, चारित्र से पराङ्मुख हैं और चारित्रधारी मुनि, आर्यिका आदि की मखौल उड़ाते हैं, उन्हें आत्मज्ञान से शून्य, द्रव्यवेषी, पाखण्डी व क्रियाकाण्डी कहते हैं, सदा गर्व से उन्मत्त रहते हैं। त्यागी पुरुषों को देखकर उनका अनादर व अपमान करते हैं, उनकी निंदा करते हैं, उनके चारित्र को सर्वथा सदोष ही समझते हैं और स्वयं चारित्र धारण करते नहीं हैं, ऐसे लोग ही निश्चयाभासी हैं।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में निश्चय और व्यवहार का समन्वय करके इन एकांत दुराग्रहों को जलांजलि दे देनी चाहिए। चूँकि ये निश्चयाभास अथवा व्यवहाराभास अपनी आत्मा के ही घातक हैं।

इस प्रकार यहाँ एक कुशल प्रवचनकर्त्ता के लिए संक्षेप में मार्गदर्शन दिया गया है। जिसका उद्देश्य केवल वर्तमान के संघर्षों को दूर कर श्रोताओं का सही मार्ग प्रदर्शन करना ही है। प्रत्येक विद्वान् दुराग्रह को छोड़कर आगम के आधार से सही तत्त्व का प्रतिपादन करके मोक्षमार्ग को अक्षुण्ण बनाते रहें, ऐसी मेरी भावना है।

तीर्थंकरत्रय मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकर-चक्रवर्ति-कामदेवपदसमन्वित-श्री शांतिनाथकुंथुनाथअरनाथतीर्थंकरेभ्यो नमः।

तीन लोक मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यसंबंधिअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुजिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।

(1) तीन लोक का ध्यान

1. तीन लोक रचना बनाकर अर्थात् दोनों पैरों को फैलाकर दोनों हाथों को कमर पर रखकर खड़े होने से तीन लोक का आकार बन जाता है।

ऐसा आकार बनाकर खड़े होकर कम से कम पाँच मिनट तक तीन लोक के जिनमंदिरों की वंदना करना चाहिए।

2. इसमें नाभि के नीचे अधोलोक के जिनमंदिरों की वंदना करें।

3. नाभि के पास मध्यलोक के जिनमंदिरों की वंदना करें।

4. नाभि के ऊपर से लेकर मस्तक तक ऊर्ध्वलोक के जिनमंदिरों की वंदना करें।

5. पुनः तीनलोक के सामूहिक जिनमंदिरों एवं जिनप्रतिमाओं को नमस्कार करके वन्दना करें।

6. अनन्तर सिद्धशिला के अनन्त सिद्धों को नमस्कार करें।

इस तीन लोक के ध्यान की विधि संक्षेप में दिखाई जा रही है-

तीन लोक के अकृत्रिम-शाश्वत जिनमंदिरों की वंदना

1. अधोलोक में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं।

2. मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन शाश्वत जिनमंदिर हैं।

3. ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस जिनमंदिर हैं।

4. तीनों लोक में आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार, चार सौ इक्यासी, ऐसे शाश्वत जिनमंदिर हैं।

5. इन तीनों लोकों के जिनमंदिर में प्रत्येक में 108-108 जिनप्रतिमाएँ हैं, जिनकी संख्या-925 करोड़, 53 लाख, 27 हजार, 9 सौ 48 है।

इन सब जिनमंदिर, जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

6. व्यन्तर देवों के एवं ज्योतिषी देवों के असंख्यात जिनमंदिर हैं, उन सबमें 108-108 ऐसी असंख्यात जिनप्रतिमाएँ हैं उन सबको मेरा नमस्कार होवे।

7. मध्यलोक में, ढाई द्वीप में 170 कर्मभूमियाँ हैं। इनमें जितने भी अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य एवं चैत्यालय हैं, जितने भी कृत्रिम जिनमंदिर हैं, जितनी भी पंचकल्याणक भूमि, निर्वाणभूमि एवं अतिशय क्षेत्र हैं उन सबको मेरा नमस्कार होवे।

8. पुनः मस्तक के अग्रभाग पर अर्द्धचन्द्राकार सिद्धशिला बनाकर-बुद्धि से चिन्तन करते हुए सिद्धशिला पर विराजमान अनन्तानन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते हुए नीचे लिखे पद्य को पढ़ें।

पद्य – **त्रिभुवन के मस्तक पर सिद्ध-शिला पर सिद्ध अनन्तानन्त।**
नमों नमों त्रिभुवन के सभी, तीर्थ को जिससे हो भव अन्त।।1।।

इस प्रकार तीन लोक के ध्यान से अनन्त पुण्य का बंध होता है। असंख्य पापों का नाश एवं भूत-व्यन्तरों के प्रकोप का अभाव तथा रोगों का नाश होता है एवं संसार भ्रमण समाप्त करने की शक्ति प्रगट होती है।

(2) समवसरण का ध्यान

भगवान को केवलज्ञान प्रगट होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अर्धनिमिष में समवसरण की रचना कर देता है। उस समय भगवान तीनों लोकों को और उनकी भूत, भावी, वर्तमान समस्त पर्यायों को युगपत् एक समय में जान लेते हैं।

भगवान शांतिनाथ का समवसरण पृथ्वी से 5000 धनुष (20000 हाथ) ऊपर आकाश में अधर है। पृथ्वी से एक हाथ ऊपर से एक-एक हाथ ऊँची बीस हजार सीढ़ियाँ हैं। इनसे चढ़कर मनुष्य और तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव–बाल, वृद्ध, अंधे, लूले, लंगड़े, रोगी आदि अंतर्मुहूर्त (48 मिनट) में ऊपर पहुँच जाते हैं। भगवान शांतिनाथ का समवसरण साढ़े 4 योजन (36 मील) का गोल है।

इसमें चार परकोटे और पाँच वेदियाँ हैं। इनमें आठ भूमियाँ हैं। चारों दिशाओं में बहुत ही विस्तृत वीथी–बड़ी-बड़ी गलियाँ हैं।

इस समवसरण में क्रम से पहले धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासाद भूमि, वेदी, खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवनभूमि, वेदी, ध्वजभूमि, परकोटा, कल्पभूमि, वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी है। आगे 16 सीढ़ी ऊपर चढ़कर पहली कटनी, 8 सीढ़ी चढ़कर दूसरी कटनी, पुनः 8 सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी है। इसी पर भगवान विराजमान हैं।

प्रत्येक परकोटे और वेदियों में चारों दिशाओं में एक-एक गोपुर द्वार हैं। जिनमें से पूर्वदिशा में ''विजय'', दक्षिण में ''वैजयंत'' पश्चिम में ''जयंत'' और उत्तर में ''अपराजित'' ऐसे नाम हैं। इन चारों के उभय पार्श्व में दो-दो नाट्यशालाएं हैं, जिनमें देवांगनाएं भगवान की भक्ति में विभोर हो नृत्य-गान करती रहती हैं। वहाँ द्वारों के दोनों और नवनिधि, मंगलघट और घूपघट आदि स्थित हैं। प्रत्येक परकोटे के द्वारों पर देवगण हाथ में दण्ड, मुदगर आदि लेकर रक्षक बनकर खड़े हुए हैं।

समवसरण में प्रवेश करते ही चारों गली में दिव्य रत्नमय मानस्तंभ हैं जो कि भगवान से बारहगुने ऊँचे हैं। भगवान शांतिनाथ के शरीर की ऊँचाई 160 हाथ है अतः ये बारहगुणे $160 \times 12 = 1920$ हाथ ऊँचे हैं। बीस योजन तक प्रकाश फैलाते हैं। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता है और वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंत संसार को सीमित कर लेता है।

केवली भगवान के प्रभाव से चारों तरफ चार सौ कोस तक सुभिक्षता, हिंसा और उपसर्गादि का अभाव, सभी जन्मजात शत्रु-सिंह, हिरण आदि का आपस में मैत्री भाव, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक साथ आ जाना आदि अतिशय हो जाते हैं।

भगवान के श्रीविहार में आकाश में अधर, उनके चरण के नीचे देवगण स्वर्णमय सुगंधित दिव्य कमलों को रचते जाते हैं और अहिंसा धर्म के दिग्विजय को सूचित करता हुआ 'धर्मचक्र' भगवान के आगे-आगे चलता है एवं सरस्वती-लक्ष्मी देवी आजू-बाजू में चलती हैं। आकाशगामी ऋद्धिधारी साथ में चलते हैं असंख्य देव-देवियाँ, इन्द्रादिगण पीछे-पीछे चलते हैं एवं साधारण मुनि, आर्यिकाएं, मनुष्य, पशु आदि नीचे-नीचे चलते हैं। जहाँ भगवान रुक जाते हैं वहाँ पुनः कुबेर समवसरण की रचना कर देता है।

समवसरण में आठ भूमि और तीन कटनी

(1) पहली ''चैत्यप्रासादभूमि'' है, इसमें एक-एक जिनमंदिर के अंतराल में पांच-पांच प्रासाद हैं। **(2)** दूसरी ''खातिकाभूमि'' हैं, इसके स्वच्छ जल में हंस आदि कलरव कर रहे हैं और कमल आदि पुष्प खिले हैं। **(3)** तीसरी ''लताभूमि'' हैं, इसमें छहों ऋतुओं के पुष्प खिले हुए हैं। **(4)** चौथी ''उपवनभूमि'' हैं, इसमें पूर्व आदि दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन हैं। प्रत्येक वन में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं जिनमें 4-4 जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। प्रत्येक प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ हैं। **(5)** पांचवी ''ध्वजाभूमि'' हैं, इसमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन दस चिन्हों से सहित महाध्वजाएं और उनके आश्रित लघुध्वजाएं 108-108 हैं। सब मिलाकर 4,70,880 हैं। **(6)** छठी ''कल्पभूमि'' हैं, इसमें भूषणांग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। चारों दिशा में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात ऐसे एक-एक सिद्धार्थवृक्ष हैं। इनमें चार-चार सिद्धप्रतिमाएं विराजमान हैं । **(7)** सातवीं ''भवनभूमि'' में भवन बने हुए हैं। इस भूमि के पार्श्व भागों में अर्हंत और सिद्धप्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं। **(8)** आठवीं ''श्रीमण्डपभूमि'' हैं, इसमें 16 दीवालों के बीच में 12 कोठे हैं जिनमें 1. गणधरादि मुनि, 2. कल्पवासिनी देवी, 3. आर्यिका और श्राविका, 4. ज्योतिषी देवी, 5. व्यंतर देवी, 6. भवनवासिनी देवी, 7. भवनवासी देव, 8. व्यंतर देव, 9. ज्योतिष देव, 10. कल्पवासी देव, 11. चक्रवर्ती आदि मनुष्य और 12. सिंहादि तिर्यंच, ऐसे बारहगण के असंख्यातों भव्यजीव बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। वहां पर रोग, शोक, जन्म, मरण, उपद्रव आदि बाधाएं नहीं हैं।

पुनः प्रथम कटनी पर आठ महाध्वजाएं हैं, द्वितीय कटनी पर आठ मंगलद्रव्य आदि है। तृतीय कटनी पर गंधकुटी में सिंहासन पर लाल कमल की कर्णिका पर भगवान शांतिनाथ चार अंगुल अधर विराजमान हैं। इनका मुख एक तरफ होते हुए भी चारों तरफ दिखने से ये चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाते हैं। भगवान के पास अशोकवृक्ष, तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल, चौंसठ चंवर, सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि बाजे और हाथ जोड़ाभासद ये आठ महाप्रातिहार्य हैं। वहीं पर गरुड़ यक्ष और महामानसी यक्षी विद्यमान हैं।

इन ऋषभदेव भगवान को मेरा अनंतबार नमस्कार हो।

(तिलोयपण्णत्ति हरिवंशपुराण और समवसरण स्तोत्र के आधार से)

सिद्ध लोक और सिद्ध शिला

सर्वार्थसिद्धि नामक इंद्रक के ध्वज से 12 योजन मात्र ऊपर जाकर 'ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवीं पृथ्वी स्थित है। तीन भुवन के मस्तक पर स्थित इस पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 1 राजु है, उत्तर-दक्षिण लम्बाई 7 राजु है एवं मोटाई आठ योजन मात्र है। अतः यह पृथ्वी लोक के अंत तक आठ योजन मोटी है। इस पृथ्वी के ऊपर तीन वातवयल हैं जो कुछ कम एक योजन मात्र हैं। घनोदधि वातवलय 2 कोस, घनवात वलय 1 कोस, तनु वातवलय 425 धनुष कम 1 कोस है।

इस आठवीं पृथ्वी के मध्य में रजतमयी, अर्धचन्द्र के आकार वाला मनुष्य क्षेत्र समान, गोल, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत 'सिद्ध क्षेत्र' है। इस क्षेत्र के मध्य की मोटाई आठ योजन है एवं क्रम से घटते-घटते अंत में 1 अंगुल मात्र है। अर्थात् यह सिद्ध शिला उपरिम भाग में तो समान रूप है और नीचे हानि वृद्धि रूप है। त्रिलोकसार में इस सिद्ध शिला को उत्तान चषक मिव-सीधे रखे हुए कटोरे सदृश कहा है। यह शिला 4500000 योजन विस्तृत है और इसकी परिधि 14230249 योजन प्रमाण है।

सिद्धशिला से कितने ऊपर सिद्ध भगवान हैं ?

सभी सिद्ध भगवान सिद्ध क्षेत्र के उपरिम भाग-तनु वातवलय के चतुर्थ भाग में विराजमान हैं, अंतिम शरीर के प्रमाण से किंचित् न्यून आत्मप्रदेश वाले हैं।

आठवीं पृथ्वी के ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धों का आवास है। अर्थात् सर्वार्थसिद्धि से 12 योजन ऊपर की आठवीं पृथ्वी है यह एक राजु चौड़ी 7 राजु लम्बी है किन्तु मोटी 8 योजन मात्र ही है इस पृथ्वी के मध्य में सिद्ध शिला है वह भी मोटी 8 योजन मात्र ही है मध्य में गोलाकार है, जो कि 4500000 योजन प्रमाण है। इसके ऊपर 425 धनुष कम 1 योजन में तीन वातवलय हैं सिद्ध परमेष्ठी अंतिम तनुवात वलय में स्थित हैं। एक योजन में 8000 धनुष होते हैं उसमें से 7050 धनुष ऊपर जाकर सिद्धों का आवास है जो कि 1050592601953-1/8 योजन प्रमाण है।

तनुवात वलय 1 कोस का है एक कोस में 2000 धनुष होते हैं इसमें 425 धनुष घटाइये तब पंद्रह सौ पचहत्तर धनुष होता है। $2000 - 425 = 1575$ धनुष। तनुवातवलय के कोस प्रमाणांगुल की अपेक्षा से है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहारांगुल की अपेक्षा से है। इसलिये 1575 को 500 से गुणा करके व्यवहार धनुष बना लीजिये $1575 \times 500 = 787500$ तनुवातवलय की मोटाई को पाँच सौ से गुणा करके 1500 का भाग देने पर सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है एवं 900000 का भाग देने पर जघन्य अवगाहना होती है जैसे- $1575 \times 500 \div 1500 = 525$

धनुष। 1575×500 ÷900000=7/8 धनुष, =3/1/2 हाथ। इसमें सिद्धों की जघन्य अवगाहना सात धनुष के आठवें भाग है। धनुष के 4 हाथ होते हैं अतः 7×4=28; 28÷8=3-1/2। सिद्धों की जघन्य अवगाहना 3-1/2 हाथ है एवं उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष है।

वे सिद्ध जीव जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहीं तक जाकर स्थित हो गये हैं आगे नहीं जाते हैं। एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना से सहित अनंत सिद्ध होते हैं। मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के मस्तक सदृश होते हैं अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं। जितना मार्ग मध्यलोक के ऊपर जाने योग्य है उतना जाकर लोक शिखर पर सब सिद्ध पृथक् पृथक् मोम से रहित मूषक के अभ्यंतर आकाश के सदृश हो जाते हैं। ये सिद्ध भगवान आठ कर्मों से छूटकर सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान आदि अनंतगुणों के सागर स्वरूप, अरूपी, अशरीरी, नित्य, निरंजन, कृतकृत्य होकर एक ही समय में युगपत् तीनलोक, तीनकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान लेते हैं और अनंत सुख सागर में सदा के लिये निमग्न हो जाते हैं। असंख्यों कल्प कालों के बीत जाने पर भी वे वापस संसार में नहीं आते हैं। संसार के संपूर्ण दुःखों से छूटकर आत्मीक अनंत शिव सौख्य का अनुभव करते हैं।

शांति मंत्र

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथाय जगत्शांतिकराय सर्वोपद्रवशांतिं कुरु कुरु ह्रीं नमः।

श्री ऋषभदेव मंत्र

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवाय सर्वसिद्धिकराय सर्वसौख्यं कुरु कुरु ह्रीं नमः।

तीन लोक वंदना

—शंभु छन्द—

त्रिभुवन के जितने चैत्यालय, अकृत्रिम उनको नित वंदूँ।
भव भव के संचित पाप पुंज, उन सबको इक क्षण में खंडूँ।।
असुरों के चौंसठ लाख नागसुर, के चौरासी लाख कहे।
वायूसुर के छयानवे लाख, सुपरण के बहत्तर लक्ष कहें।।1।।

विद्युत् अग्नी स्तनित उदधि, दिक् द्वीपकुमार भवनवासी।
इन छह में पृथक्-पृथक् जिनगृह, छ्यत्तर लक्ष सुगुण-राशी।।
सब लक्ष बहत्तर सात कोटि, ये जिनगृह भवनालय सुर के।
ये अधोलोक के जिनमंदिर, नितप्रति वंदूँ अंजलि करके।।2।।

इस मध्यलोक के पाँच मेरु, के अस्सी तीस कुलाचल के।
रजताचल के इक सौ सत्तर, अस्सी हैं वक्षाराचल के।।
गजदंत गिरी के बीस भवन, जंबू शाल्मलि के दश मानें।
इष्वाकृति नग के चार चार, मनुजोत्तर के भी भव हानें।।3।।

अंजनगिरि के चउ दधिमुख के, सोलह रतिकर के बत्तिस हैं।
नंदीश्वर द्वीप जिनालय ये, बावन अतिशय गुणमंडित हैं।।
कुंडलगिरि रुचकगिरी के भी, हैं चार चार सब मिल करके।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर मध्यलोक भर के।।4।।

व्यंतरदेवों ज्योतिष सुर के, सब संख्यातीत जिनालय हैं।
इस ऊपर ऊर्ध्वलोक में भी, वैमानिक वंदित आलय हैं।।
सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर, बत्तीस लाख शाश्वत मानों।
ईशान स्वर्ग में अट्ठाईस, हैं लाख जिनालय सरधानों।।5।।

सानत्कुमार में बारह लख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष।
दिव ब्रह्मयुगल में चार लाख, लांतव युग में पच्चास सहस।।
चालिस हजार दिव शुक्र युगल में, छह हजार युग शतार में।
जिननिलय सात सौ आनत औ, प्राणत आरण अच्युत दिव में।।6।।

ग्रैवेयक तीन अधो में हैं, इक सौ ग्यारह मध्यम त्रय में।
हैं इक सौ सात तथा जिनगृह, हैं निन्यानवे ऊर्ध्व त्रय में।।
नव अनुदिश में नव जिनमंदिर, पंचानुत्तर में पाँच कहें।
इन सबका वंदन करते ही, भविजन मनवांछित सिद्धि लहें।।7।।

तीनों लोकों के ये जिनगृह, सब आठ कोटि छप्पन सुलक्ष।
सत्तानवे सहस चार सौ औ, इक्यासी प्रमित कहे शाश्वत।।
नव सौ पच्चीस कोटी त्रेपन, हैं लाख सताइस सहस सही।
नव सौ अड़तालीस जिनप्रतिमा, प्रति जिनगृह इक सौ आठ कहीं।।8।।

सब जिनगृह में अनुपम शाश्वत, मानस्तंभादिक रचनाएँ।
वर्णन पढ़ते ही जन मन में, दर्शन की इच्छा प्रकटाएँ।।
जिनबिंब पांचशत धनुष तुंग, उन वीतराग छवि मनहारी।
मैं केवल ''ज्ञानमती'' हेतू, नित नमूँ जिनालय सुखकारी।।9।।

सुमेरु वंदना

–वसंततिलका छंद –

तीर्थंकर-स्नपननीर-पवित्रजातः, तुङ्गोऽस्ति यस्त्रिभुवने निखिलाद्रितोऽपि।
देवेन्द्र-दानव-नरेन्द्र-खगेन्द्रवंद्यः, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।1।।

यो भद्रसालवन-नंदन-सौमनस्यैः, भातीह पांडुकवनेन च शाश्वतोऽपि।
चैत्यालयान् प्रतिवनं चतुरो विधत्ते, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।2।।

जन्माभिषेकविधये जिनबालकानाम्, वंद्याः सदा यतिवरैरपि पांडुकाद्याः।
धत्ते विदिक्षु महनीयशिलाश्‍चतस्रः, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।3।।

योगीश्वराः प्रतिदिनं विहरन्ति यत्र, शान्त्यैषिणः समरसैक-पिपासवश्च।
ते चारणर्द्धि-सफलं खलु कुर्वतेऽत्र, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।4।।

ये प्रीतितो गिरिवरं सततं नमन्ति, वंदन्त एव च परोक्षमपीह भक्त्या।
ते प्राप्नुवंति किल 'ज्ञानमतिं' श्रियं हि, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।5।।

तीर्थंकरत्रय स्तोत्र

मंगलं शांतिनाथोऽर्हन्, कुंथुनाथोऽस्तु मंगलम्।
मंगलमरनाथोऽपि, जन्मभूमिश्च मंगलम्।।1।।

–बसंततिलका छंद (14 अक्षरी) –

श्रीविश्वसेननृपजो भुवि शांतिकारी। शांत्यैषिणां वितनुते किल पूर्णशांतिं।।
ऐरावती सुतवती भुवनैकमाता। देवैर्नुता जगति मंगलमातनोतु।।2।।
या सप्तमीतिथिरभूदसिते नभस्ये[1]। गर्भागमो जगति मंगलकृच्च तस्यां।।
ज्येष्ठेऽसिते तिथिरभूत् सुचतुर्दशी सा। तस्यां जनिश्च जिनलिंगधरोऽपिभगवान्।।3।।
पौषे सिते सकलबोधरविः दशम्यां। धर्मामृतैर्भविजनानभिषिक्तवान् यः।।
दीक्षातिथौ शिवरमां परिपूर्णसौख्यां। सम्मेदशैलशिखरे स्वयमाप्नुतेऽसौ।।4।।

– असंबाधा छंद (14 अक्षरी) –

शांतीशः कुर्यात्, त्रिभुवनजनतायै शम्।
वाणी ते पुष्यात्, कलिमलहरिणी भव्यान्।।
लोकांतं व्याप्तं तव धवलयशः स्वामिन्!।
शांतीशः कुर्यात् मम मनसि सदा शांतिं।।5।।

– मालिनी छंद (15 अक्षरी) –

अतुलसुखयुतोऽयं कुंथुनाथस्त्रिलोक्यां।
प्रथितसुखकरीयं हस्तिनापूः पृथिव्यां।।
जिनवरजनकोऽयं सूरसेनः प्रसिद्धः।
मम भवतु सदायं मुक्तिलक्ष्म्यै जिनेशः।।6।।

– मणिगुणनिकर छंद (15 अक्षरी) –

अर जिनवर! तव, पदयुगकमलं। वसतु मनसि मम, कलिमलदलनं।।
सुरनरमुनिगण-कृतबहुशरणम्। प्रभवति जिन! तव, शमदमसुवृषः।।7।।

–उपजाति छंद (11 अक्षरी) –

श्रीशांतिनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यम्। श्रीकुंथुनाथाय सदा नमोऽस्तु।।
नमोऽस्तु स्वामिन् अरनाथ! तुभ्यम्। सज्ज्ञानमत्या सह त्वद्गुणाप्त्यै।।8।।

तीर्थकृच्चक्रभृत्काम - देव - त्रिपदधारिणः।
शांतिकुंथ्वरतीर्थेशा, भवद्भ्योऽनन्तशो नमः।।9।।

1. भाद्रपदे। ''स्युर्नभस्यप्रौष्ठपदभाद्रभाद्रपदाः'' इत्यमरकोषे। नभस्ये-भाद्रपदे उत्तरपुराणे।